आसक्ति

श्रीगोविन्ददास उदासी बाबा

आत्मतृप्ति के लिए जो आकांक्षा है उसी का नाम आसक्ति है। आसक्ति की तरह सर्वनाश की वस्तु मानव जीवन में अन्य कुछ नहीं है। मनुष्य के जन्म लेने के पश्चात् कालांतर में पृथ्वी के अणु-परमाणु से जब वह बिजरित होने लगता है परिणामत: पृथ्वी के प्रत्येक पदार्थ से संबंध स्थापित करने के लिए वह व्याकुल होने लगता है। तब पंचभूतात्मक पृथ्वी के सभी छोटे-बड़े पदार्थों से संलग्न होना चाहता है, एवं उसकी पंचेन्द्रियाँ लालायित हो उठती है। रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श रूपी भौतिक विकार एक-एक कर उसके मन को आकृष्ट करने लगते हैं, तब मनुष्य आसक्ति से आत्महारा हो जाता है, एक क्रमश: वर्द्धित आकांक्षा को ही अपने इष्ट देवता की तरह पूजने लगता है, फलस्वरूप सुखेच्छा से आसक्ति की उत्पत्ति। इस सुखेच्छा को पूर्ण करने के लिए – अभक्ष्य भक्षण, निन्दित कार्य करना, अरूप दर्शन – इन सभी चीजों से वह घृणा नहीं करता है। वह अपने सुख के लिए क्या नहीं कर सकता है? आसक्ति-उन्मत्त मानव, भ्रातृहन्ता होकर धन-वैभव प्राप्त करता है एवं पितृहन्ता होकर सिंहासन (राजसत्ता) पर बैठता है। एक भोग-विलास के ऊपर दूसरे भोग-विलास की स्थापना कर वह अपने मन की इच्छा को संपुष्ट करता है। उस समय उसके मन में परलोक की बात नहीं आती है। संसारिक सुख को सबकुछ मानकर, महिमामय ईश्वर की जगह अपने आत्मसम्मान को प्रतिष्ठित कर वह अभागा अपने प्रतिष्ठा की पूजा हेतू सर्वस्व न्योछावर कर देता है। जिसके हृदय में जितनी आसक्ति है वह उतना ही स्वार्थी होता है। वह दूसरों को कभी खुद से बड़ा नहीं समझता है। परश्रीकातरता उसके हृदय की अधिष्ठातृ देवी है। हिंसा प्रवृत्ति उनकी अस्थि-मज्जा है। क्रोध उसका सहचर है। इस तरह उच्छृंखल विचलित कदमों से जगत् में अग्रसर होता है। किन्तु, हाय! कहाँ उसके आसक्ति की परितृप्ति। इसीलिए कहता हूँ आसक्ति रूपी पूँजी एकत्र करना ही यंत्रणा का एकमात्र आधार है। जहाँ आसक्ति है, वहीं पर मनुष्य अत्याचारी, व्यभिचारी, नृशंस एवं विश्वासघाती हो जाता है। एक मुट्ठी अन्न से जिनका स्वच्छन्द दिवस अतिवाहित होता है, दस मन लकड़ी ही जिसके देह की अंतिम परिणति है, वही क्षुद्रादपि क्षुद्र मानव एक मात्र आसक्ति हेतू अहंकार से आत्महारा, अत्याचार से दिग्भ्रांत, दूसरे को लूटने में ही आनन्दित होता है। आसक्ति की वृद्धि से ही मोह की वृद्धि, मोह की वृद्धि से ही धर्मबुद्धि का नाश होता है। धर्मबुद्धि नष्ट होने से ही अहंकार की उत्पत्ति होती है। आसक्ति रूपी अग्नि के प्रज्ज्वलित होते ही, अभागे मनुष्य का अन्तरतम मर्मस्थल हठात् ही दग्ध हो उठता है। सर्वनाशी आसक्ति के हाथ से बचने का एकमात्र उपाय है केवल 'आत्मचिंतन' करना। केवल स्थिर चित्त से आत्मचिंतन द्वारा ही आसक्ति का नाश हो सकता है। जिनमें आत्मचिंतन की क्षमता नहीं है, उनके लिए कभी-कभी एकांतवास करना आवश्यक है। चंचल मन को संयत न कर सकने से आत्मचिंतन की शक्ति उत्पन्न ही नहीं होती है। आसक्ति नाश करने का और एक तरीका है 'संयम'। वस्त्रहीन आये हैं और इसी तरह ही चले जाना है। इस बात को मन में स्मरण रखने से मानव-हृदय में आसक्ति का अधिक प्रश्रय नहीं मिलता। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चंचल मन को वश में किया जा सकता है। जो आत्मविस्मृत मोह-मुग्ध संसार का दासानुदास है वह क्या वाग्य की साधना कर सकता है? भगवान कहते हैं कि प्रयास करने पर असाध्य भी साध्य हो सकता है। अभ्यास से क्या नहीं हो

श्रीगोविन्ददास उदासी बाबा

सकता है? चित्त को स्थिर करने हेतू जो प्रयास है उसे ही अभ्यास कहते हैं। मन को स्थिर करने के लिए योगीगणों ने अनेक तरह के नियम एवं अष्टांग योग की व्यवस्था की थी। अभ्यास करने से मन की कुप्रवृत्तिओं का निरोध हो जाता है। मनुष्य यदि सभी विषयों को नश्वर माने, उसके प्रति मन में वैराग्य उत्पन्न करने की कोशिश करे, तो मन की कुप्रवृत्ति का निरोध हो सकता है।

आजीवन मन को चंचलता का उपादान बना रखा है, इसीलिए चंचल मन स्थिर नहीं होता है। मन तो केवल नित्य नवीन वासनाओं की ओर खींच रहा है। एक भोग अभी समाप्त ही नहीं हुआ है, उसके पूर्व ही दूसरे भोग की कामना करने लगता है। अनित्य को ही 'मेरा, मेरा' कहकर कसकर पकड़े रहता है। मन को स्थिर करने की कोशिश करो। अभ्यास करने से ही फिर वह स्थिर होगा। एक माह प्रयत्न करने से अगर सफल न हुए तो क्या, छः माह में तो होगा ही। नहीं तो तीन वर्षों में यह स्थिर होगा ही। इसलिए हमलोग वैराग्य साधन की अपेक्षा अभ्यास की क्षमता पर अधिक बल देते हैं। सभी लोग ऐसा सोचते हैं कि अनित्य सुख की आकांक्षा से शान्ति उपलब्ध होगी। आसक्ति की पीड़ा से ग्रस्त व्यक्ति को शान्तिलाभ दुर्लभ है। एक आसक्ति के पूर्ण होने के पूर्व ही फिर एक नूतन आसक्ति हेतू मन दौड़ने लगता है। फलस्वरूप सुखेच्छा हमेशा के लिए अपूर्ण ही रह जाती है। जिन को आसक्ति नहीं हैं वे कर्मवीर है। वे अतीन्द्रिय चिन्मय राज्य के समग्र सुखों के सम्राट हैं। वे भूलोक पर स्वर्ग के देवता हैं। वैकुण्ठ कहो, या स्वर्ग कहो, सब उसके आयत्ताधीन हैं। स्वयं ईश्वर उसके पुण्यमय हृदय में अतिथि स्वरूप रहते हैं। आसक्ति पर विजय प्राप्त करना एक अति दुरूह साधना है। कामना का त्याग करना क्या सहज बात हैं! इसीलिए जो कामनाजयी हैं उनकी हमलोग पूजा करते हैं। इसीलिए भारत के घर-घर में साधु-संतों का इतना अधिक आदर होता हैं। हाय! कब हमलोग अनासक्त होकर, सुख-दुःख को समान समझकर विधाता का आशीर्वाद ग्रहण करेंगे। कब हमलोग अपनी आसक्ति को उस चिन्मय देवता के चरण-कमल पर समर्पित कर पायेंगे? ऐ मेरे प्राणों के देवता, इस प्राण के मध्य तुम और अधिक देर मत छुपे रहो। हे प्रभु, सदा सर्वदा तुम मेरे नयनों के सम्मुख रहो। मुझे तुम अपने रातुल चरणों से विलग मत करो, ऐ प्रेममय प्राणों के देवता, मुझे अपने चरणों से दूर मत करो।

हिन्दी अनुवाद–मातृचरणाश्रिता श्रीमती सुशीला सेठिया